THE ECONOMIC TIMES

Date:06-07-23

Important Not to Get Shanghaied

ET Editorials

It's not every day you find India sharing a high table with China and Pakistan. The 23rd Shanghai Cooperation Organisation (SCO) summit on Tuesday was such an occasion. So far, SCO has been shaped as a multilateral body with 'Chinese characteristics'. India, a full member since 2017 and SCO president this year, is an odd one out. Given the current geopolitics, India's efforts to shape the forum as a platform for engaging on issues where collaboration and cooperation is possible are commendable.

Prime Minister Narendra Modi's address and the New Delhi Declaration make it clear that SCO will not be a platform directed against other states and international organisations. But that didn't mean dodging monsters under the bed. 'Some countries [use] cross-border terrorism as an instrument of their policies,' Modi said, adding, 'SCO should not hesitate to criticise such countries. There should be no room for double standards on such a serious issue. ' There must have been some amount of uncomfortable fidgeting under the proverbial table at this point. But it is important that no one left the same table. Focusing on facets critical to the region's development — encapsulated in the theme, SECURE: Security for citizens, Economic development, Connectivity in the region, Unity, Respect for sovereignty and territorial integrity, and Environmental protection — was being proactive.

India has identified five new pillars for cooperation — startups and innovation, traditional medicine, youth empowerment, digital inclusion, and shared Buddhist heritage. Fuzzy bits, sure. But it is important this motley crew — antagonists included — continue to share this space to remind themselves, and others, of commonalities that actually do exist in all the din.

THE HINDU

Date:06-07-23

Diminishing returns

India benefitted as a member of the Shanghai Cooperation Organisation, but the future is not bright

Editorial

The Shanghai Cooperation Organisation-Council of Heads of State meeting, hosted by Prime Minister Narendra Modi on Tuesday, marked the first time India chaired the summit of regional countries. India became a full SCO member in 2017, along with Pakistan. The government has held that joining the

originally Eurasian group was important as member-countries make up a third of the global GDP, a fifth of global trade, a fifth of global oil reserves and about 44% of natural gas reserves. Also important is its focus on regional security and connectivity — areas key to India's growth and making up its challenges, such as terrorism in Pakistan, and Chinese aggressions as well as the Belt and Road Initiative. Being "inside the tent" is important, especially as Pakistan is a member, even if that means conducting joint exercises under the SCO Regional Anti-Terrorist Structure. The SCO also gives India an interface with Central Asian markets and resources. Finally, joining the SCO was a key part of India's stated ambitions on "multi-alignment" and "strategic autonomy" while becoming a "balancing power" in the world, and it seems no coincidence that the Modi government joined the revived Quad with the U.S., Japan and Australia in the same year that it took up the full SCO membership. Over the past year, this has become an economic necessity as India has chosen to be neutral on the Ukraine war, benefiting from fuel and fertilizer purchases from Russia.

Therefore, it was expected that India's turn to chair the SCO this year would be a major event, rivalling the expected pomp around the G-20 meet in September. In addition, given Russia's and China's blocks on the G-20 joint communiqué that India is keen to find consensus on, the SCO summit would have been a convenient venue for Mr. Modi to negotiate a resolution with his counterparts. However, India's decision to postpone the SCO summit due to the Prime Minister's U.S. State visit, and then to turn it into a virtual summit may have been a dampener on the SCO outcomes. India's concerns with hosting Xi Jinping given the LAC hostilities, or Pakistan Prime Minister Sharif's possible 'grandstanding', or even the optics of welcoming Russian President Vladimir Putin may have been factors. Whatever the reason, while the members hammered out a New Delhi declaration and joint statements on radicalisation and digital transformation, the government was unable to forge consensus on other agreements including one on making English a formal SCO language, while India, despite being Chair, did not endorse a road map on economic cooperation, presumably due to concerns over China's imprint. With its SCO chairpersonship ending, the government may now be feeling the law of diminishing returns over its SCO engagement — one that might make its task of hosting the G-20 even more difficult.

दैनिक भास्कर

Date:06-07-23

शोध का लाभ चाहिए तो उद्योगों को खर्च करना होगा

संपादकीय

अमेरिकी प्रतिष्ठान 'एनआरएस' की तर्ज पर भारत में भी प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली एक 16 सदस्यीय गवर्निंग बॉडी के तहत राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (एनआरएफ) बनेगा। यह उच्च शिक्षा में वैज्ञानिक शोध के लिए फंडिंग और मॉनिटरिंग करेगा। साथ ही शोध को कुछ आईआईटीज या बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं तक सीमित ना कर कॉलेजों तक लाएगा। विभागीय मंत्री ने इस नए प्रयास को 'शोध बजट का प्रजातंत्रीकरण' बताते हुए कहा कि यह निजी उद्यमियों को

शोध-फंडिंग के लिए प्रोत्साहित करेगा। विगत 11 वर्षों में 'आर एंड डी' पर जीडीपी के प्रतिशत के रूप में कुल व्यय 7.8 से घटकर 6.4 रह गया है। इसमें भी निजी क्षेत्र का योगदान आधे से भी कम (40%) है, जबकि विकसित देशों में यह 70% से ज्यादा है। अच्छे शोध का लाभ सबसे पहले उद्योगों को मिलता है। ऐसे में कुपोषण दूर करने, सड़क बनवाने, शिक्षा स्वास्थ्य बेहतर करने से लेकर न्यूक्लिअर रिएक्टर और बुलेट ट्रेन चलाने के साथ शोध-व्यय का काम सरकार ही क्यों करे? चूंकि पीएम इस नए शोध न्यास के मुखिया होंगे लिहाजा उद्यमी खुशी से धन दे सकेंगे। इससे उन्हें नए शोधों से उपजे उद्यमों से वाणिज्यिक लाभ मिलेगा। सेमी कंडक्टर के शोध पर भी ये उद्यमी मदद कर सकते हैं। इस दिशा में भारत को आगे लाने के लिए एनआरएफ अच्छी पहल है।

दैनिक जागरण

Date:06-07-23

शंघाई सहयोग संगठन

संपादकीय

शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन की ओर से जारी संयुक्त बयान में चीन की महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव यानी बीआरआइ के उल्लेख से भारत ने जिस तरह दूरी बनाई, उस पर आश्चर्य नहीं। भारत इस परियोजना का प्रारंभ से ही विरोध करता आ रहा है। वास्तव में वह पहला देश था, जिसने तब इस परियोजना का विरोध किया था, जब छोटे-बड़े तमाम देश उसका समर्थन कर रहे थे। चीन को इसकी आशा भी नहीं करनी चाहिए कि भारत उसकी इस परियोजना का समर्थन करेगा। चीन की इस परियोजना का एक हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे वाले हिस्से से गुजरना है, जो कि भारत का भूभाग है। हालांकि चीन इस तथ्य से भली तरह परिचित है, लेकिन वह अपने अड़ियल रवैये के चलते भारत की संप्रभुता की अनदेखी करने में लगा हुआ है। चीन इस मामले में दोगली नीति पर चल रहा है। एक ओर तो वह यह चाहता है कि भारत समेत अन्य देश उसकी संवेदनशीलता का ध्यान रखें, लेकिन वह अन्य देशों के मामले में ऐसा कुछ करने से इन्कार करता है। भले ही शंघाई सहयोग संगठन के अन्य सदस्य देशों ने बीआरआइ परियोजना का समर्थन किया हो, लेकिन भारत न केवल अपने रवैये पर अडिग रहा, बल्कि उसने यह भी स्पष्ट किया कि वह किन कारणों से इस परियोजना का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं। चीन को भारत की आपत्ति को समझना होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता तो इससे न केवल दोनों देशों के संबंध तनावपूर्ण बने रहेंगे, बल्कि शंघाई सहयोग संगठन वह सब कुछ हासिल नहीं कर सकेगा, जिसका सपना देखा जा रहा है।

समस्या केवल इतनी ही नहीं है कि चीन कनेक्टिविटी के नाम पर बीआरआइ परियोजना को आगे बढ़ाते हुए भारत की संप्रभुता की अनदेखी कर रहा है, बल्कि यह भी है कि वह शंघाई सहयोग संगठन की भावना के विपरीत काम कर रहा

है। कहने को तो वह खुद को आतंकवाद के खिलाफ बताता है, लेकिन आतंकी संगठनों को पालने-पोसने वाले पाकिस्तान का आंख मूंद कर समर्थन करता है। इतना ही नहीं, वह पाकिस्तान के उन आतंकियों का बेशर्मी के साथ बचाव भी करता है, जिन पर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद पाबंदी लगाना चाहती है। वह अभी तक पाकिस्तान के ऐसे चार-पांच आतंकी सरगनाओं की ढाल बन चुका है, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने प्रतिबंधित करने की कोशिश की। यह कारण रहा कि भारतीय प्रधानमंत्री ने शंघाई सहयोग संगठन की बैठक में चीनी और पाकिस्तानी शासनाध्यक्षों की उपस्थिति में उन्हें खरी-खोटी सुनाई और यह साफ किया कि वे किस तरह आतंकवाद को खाद-पानी देने का काम कर रहे हैं। चीन आतंकवाद पर दोहरा रवैया अपनाने के साथ पड़ोसी देशों की अखंडता की जैसी अनदेखी करने में लगा हुआ है, उसे देखते हुए इसके आसार कम ही हैं कि शंघाई सहयोग संगठन के सदस्य देशों में आपसी भरोसा कायम हो सकेगा। यह समूह दक्षेस जैसा निष्प्रभावी संगठन बनकर रह जाए तो हैरत नहीं।

जनसत्ता

Date:06-07-23

कथनी बनाम करनी

संपादकीय

शंघाई सहयोग संगठन यानी एससीओ के शासनाध्यक्षों के परिषद की तेईसवीं बैठक में मंगलवार को चीन के राष्ट्रपति और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री ने जिन बातों की वकालत की, अगर उस पर अमल को लेकर भी वे इतने ही गंभीर होते तब भारत की समस्या शायद कुछ कम हो पाती। लेकिन अफसोस यह है कि चीन और पाकिस्तान की ओर से आए दिन जिस तरह की हरकतें की जाती हैं, उससे ऐसा लगता नहीं है कि वे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जाहिर अपनी राय को लेकर उतने ही प्रतिबद्ध हैं। खासतौर पर भारत को लेकर इन दोनों देशों की ओर से कूटनीतिक मोर्चे से लेकर सीमावर्ती इलाकों पर जैसी गतिविधियों को अंजाम दिया जाता है, उसके मद्देनजर इनकी ऐसी सदिच्छाएं सवालों के घेरे में आती हैं। दरअसल, एससीओ की बैठक को डिजिटल माध्यम से संबोधित करते हुए चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने इसके सदस्य देशों से क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा सुनिश्चित किए जाने का आह्वान किया और आर्थिक सुधार को गति देने के लिए व्यावहारिक सहयोग की वकालत की। दूसरी ओर, पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ का कहना था कि आतंकवाद के कई सिर वाले राक्षस से पूरी ताकत और दृढ़ता के साथ लड़ा जाना चाहिए।

जाहिर है, एक अहम अंतरराष्ट्रीय मंच पर दोनों देशों के शीर्ष नेताओं के इन बयानों को अगर इसी संदर्भ में देखा जाए और उसे जमीन पर उतारने को लेकर वे सचमुच ईमानदार भी हों तो दक्षिण एशिया के इस हिस्से में एक जटिल समस्या का समाधान निकल सकता है। लेकिन यह छिपी बात नहीं है कि व्यवहार में चीन और पाकिस्तान के भीतर भारत को लेकर कैसे आग्रह हैं और सीमावर्ती इलाकों में कैसी अवांछित हरकतें की जाती रही हैं? एक ओर चीन लद्दाख या अरुणाचल प्रदेश में अनधिकृत घुसपैठ से नहीं हिचकता है, तो दूसरी ओर अपनी सीमा में स्थित ठिकानों से गतिविधियां संचालित करने वाले संगठनों की ओर से आतंकवादियों को प्रशिक्षण देने से लेकर भारतीय सीमा के भीतर अवैध घुसपैठ कराने तक की पाकिस्तान की हरकतें छिपी नहीं रही हैं। सवाल है कि भारत के सामने अमूमन हर समय ऐसी मुश्किल

पेश करने का मकसद क्या होता है! अगर चीनी सेना भारतीय भूभाग में अवांछित गतिविधियां करती है या फिर जम्मू-कश्मीर में आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देने के पीछे पाकिस्तान का हाथ पाया जाता है तो इसका क्या मतलब निकलता है?

सवाल है कि भारत के प्रति एक खास दुराग्रहपूर्ण रुख रखते हुए भी चीन की इस सदिच्छा का क्या अर्थ रह जाता है कि एससीओ के देशों के बीच क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा सुनिश्चित हो और वे आर्थिक सुधार को आगे बढ़ाने में कोई व्यावहारिक सहयोग दें। फिर पाकिस्तान को अगर लगता है कि आतंकवाद के कई सिर वाले राक्षस से पूरी ताकत और दृढ़ता से लड़ा जाना चाहिए तो क्या उसे सबसे पहले इस मसले पर भारत की नीतियों और जरूरत को स्वीकार नहीं करना चाहिए? यह छिपा नहीं है कि भारतीय सीमा में आतंकी दखलंदाजी को परोक्ष सहयोग देने वाला पाकिस्तान खुद भी आतंकवाद का शिकार है। वहां भी आए दिन आतंकी हमलों में लोग मारे जाते हैं। लेकिन इस मसले का कूटनीतिक इस्तेमाल करने का आरोप लगाते हुए पाकिस्तान भूल जाता है कि आतंकवाद का सामना करने के लिए भारत को अपना हर वाजिब विकल्प अपनाने का अधिकार है। जरूरत इस बात की है कि अगर चीन क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा या फिर पाकिस्तान आतंकवाद से निपटने को लेकर सचमुच गंभीर हैं तो इस मसले पर एससीओ में कही अपनी बातों पर सचमुच अमल को लेकर ईमानदार इच्छाशक्ति के साथ काम करें। ये ऐसे मुद्दे हैं, जिन पर चीन और पाकिस्तान अगर ईमानदारी से आगे बढ़ें तो उन्हें भारत का भी सहयोग मिल सकता है।

Date:06-07-23

सतत विकास लक्ष्य और लैंगिक असमानता

ज्योति सिडाना

विश्व के लगभग हर समाज में लैंगिक असमानता मौजूद है। प्राचीन काल से लेकर आज तक महिलाओं को निर्णय लेने, उन्हें आर्थिक इकाई के रूप में स्वीकार करने और सामाजिक संसाधनों तक उनकी पहुंच से उन्हें वंचित रखने की प्रथा का एक लंबा इतिहास रहा है। लैंगिक समानता का मतलब है कि दोनों को अवसरों और अधिकारों में समानता प्राप्त हो। दोनों को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का समान अधिकार प्राप्त हो और उनके साथ जाति, धर्म, लिंग, भाषा और रंग के आधार पर भेदभाव न किया जाए। सामान्यतया सभी समाजों में पुरुष या महिला होना केवल उनकी जैविक और शारीरिक विशेषताओं का बोध नहीं कराता, बल्कि पुरुषों और महिलाओं से अलग-अलग व्यवहार, आदतों और भूमिकाओं की अपेक्षा की जाती है। पुरुषों और महिलाओं के बीच संबंध, चाहे परिवार में हों, कार्यस्थल पर या सार्वजनिक क्षेत्र में, पुरुषसत्ता द्वारा ही निर्धारित होते आए हैं। जबकि संविधान और मानवाधिकार घोषणा-पत्र में महिला-पुरुष की समानता का स्पष्ट उल्लेख है। लैंगिक समानता महिलाओं और पुरुषों के प्रति निष्पक्ष होने की प्रक्रिया है। इसे सुनिश्चित करने के लिए स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर लंबे समय से प्रयास होते रहे हैं। लैंगिक समानता के लिए

आवश्यक है कि महिला और पुरुष सामाजिक शक्ति, निर्णय क्षमता, अवसरों, संसाधनों और पुरस्कारों का समान रूप से लाभ उठा सकें।

वर्जीनिया वूल्फ ने अपने एक लेख में लिखा था कि महिला का अपना खुद का कमरा/ स्पेस होना चाहिए, जहां वह स्वयं को इतना स्वतंत्र अनुभव करे कि वह खुद को काल्पनिक और गैर-काल्पनिक दोनों रूपों में देख सके। जिस तरह काल्पनिक लेखन करते समय हम स्वतंत्र होकर जो मन में आता है वह लिखते हैं और अपनी कल्पनाओं को उड़ान देते हैं, ठीक उसी प्रकार अपने निजी स्पेस में महिला को बिना किसी भय के हर स्तर की उड़ान भरने की स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए, ताकि उसकी सूक्ष्म और वृहद स्तर की बौद्धिकता प्रतिबिंबित हो सके। उसके निजी स्पेस में कौन उपस्थित हो सकता है, यह चुनाव उसका होना चाहिए। तभी संभवत: वह अपने विचार, अपने पूर्वाग्रहों, अपनी आवश्यकताओं, अपनी भाषा, अपने प्रतीक और यहां तक कि अपनी यौनिकता के सवाल को भी उन्मुक्त भाव से प्रस्तुत करने की क्षमता रख सके, जैसा कि कोई पुरुष अपने लेखन में करता है। ये निजी कमरे महिलाओं को स्वतंत्र और बिना किसी रुकावट के सोचने की क्षमता देते हैं।

हाल में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम का 2023 'जेंडर सोशल नार्म्स इंडेक्स' जारी हुआ, जो महिलाओं के खिलाफ पूर्वाग्रहों का आकलन करता है। इस सूचकांक में चार प्रमुख आयामों के आधार पर महिलाओं की भूमिकाओं के प्रति लोगों के दृष्टिकोण को दर्शाया गया है- राजनीतिक, शैक्षणिक, आर्थिक और शारीरिक अखंडता। सूचकांक से पता चलता है कि दुनिया की लगभग 90 फीसद आबादी महिलाओं के प्रति किसी न किसी प्रकार का पूर्वाग्रह रखती है। मसलन, लगभग आधी आबादी को लगता है कि पुरुष, महिलाओं की तुलना में बेहतर राजनीतिक नेता बनते हैं। पुरुषों और महिलाओं के बीच मतदान की दर समान होने के बावजूद दुनिया भर में केवल 24 फीसद संसदीय सीटें महिलाओं के पास हैं और 193 सदस्य राज्यों में से केवल दस में सरकार की प्रमुख महिला हैं। रिपोर्ट में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार 28 फीसद लोग सोचते हैं कि एक पुरुष के लिए अपनी पत्नी को पीटना उचित है। हालांकि सूचकांक और हालिया घटनाओं से पता चलता है कि अब इस तरह की सोच में बदलाव आ रहा है। यूएनडीपी जेंडर टीम की राकेल लगुनास का कहना है कि दुनिया भर में महिलाओं के अधिकारों के प्रदर्शन और 'मी-टू' आंदोलन ने संकेत दिया है कि नए मानदंडों और विकल्पों की आवश्यकता है और लोग लैंगिक समानता के लिए अभियान चलाने के लिए सक्रिय हैं।

मगर यह भी एक तथ्य है कि हमारे समाज में प्रचलित अनेक प्रथाएं और पूर्वाग्रह लैंगिक समानता की राह में बाधा उत्पन्न करती हैं। मसलन, राजस्थान के कई जिलों में आटा-साटा नामक कुप्रथा प्रचलित है, जिसमें लड़की के बदले लड़की का लेन-देन किया जाता है। यानी जिस घर से बेटी ली जाती है उसी घर में अपनी बेटी दी जाती है। ऐसा विशेष रूप से उन घरों में होता है, जिनके लड़कों की शादी किसी कारण से नहीं हो रही होती या उम्र ज्यादा होने के कारण उनकी शादी में रुकावट आ रही होती है। ऐसे में लड़की वालों को अदला-बदली का प्रस्ताव दिया जाता है। इसके पीछे तर्क दिया जाता है कि ऐसा करने से कई शादियों का खर्चा बच जाता है या कम खर्च में कई जोड़ों का विवाह हो जाता है। पर इस प्रथा में भी अधिकतर लड़कियों को उनकी पसंद-नापसंद से समझौता करना पड़ता है। कई बार तो छोटी उम्र में ही लड़कियों की अदला-बदली हो जाती है। समय-समय पर ऐसी अनेक घटनाएं सामने आती रही हैं, जिनमें इस कुप्रथा के कारण महिलाओं ने आत्महत्या कर ली। क्योंकि अगर वे अपनी शादी तोड़तीं तो उनके भाई का घर भी खराब होता। इस डर से वे आत्महत्या का रास्ता चुनने को बाध्य होती हैं।

आज समाज में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और अपराध की घटनाओं में वृद्धि का बड़ा कारण है उसे केवल एक शरीर के रूप में देखा जाना। उसके पास ज्ञान, अर्थतंत्र, शक्ति, विचार और राजनीतिक समझ भी है, इसकी हमेशा से उपेक्षा की जाती रही है। समाज में अनगिनत ऐसे उदाहरण हैं, जो सिद्ध करते हैं कि महिलाओं की इन सभी क्षेत्रों में सक्रिय सहभागिता रही है। और समाज उसके शरीर को केंद्र में रखकर इन सभी प्रक्रियाओं में उसकी सहभागिता और योगदान को दरकिनार कर देता है। ऐसा नहीं कि प्राचीन काल से अब तक महिलाओं की स्थिति में कोई सकारात्मक बदलाव नहीं आया है, पर यह भी सच है कि महिलाओं के प्रति पुरुष समाज की मानसिकता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

इसीलिए समाजवैज्ञानिक सुझाव देते हैं कि महिलाओं को दमनात्मक और गैर-दमनात्मक शक्ति को समाप्त करने के लिए स्वायत्तता, स्वतंत्रता, मानवाधिकार जैसे पक्षों के तहत अपने आप को खोजना होगा। क्योंकि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि महिलाओं की चेतना में खुद महिला अस्तित्व में नहीं है। वह केवल पति, बच्चे, रसोई, कपड़े और घर तक अपने दायरे और सोच को सीमित रखती आई है। यह भी सच है कि वर्तमान समाज में कार्यशील महिलाओं की भूमिका में व्यापक परिवर्तन देखे जा रहे हैं। अब महिलाएं अपने दायित्वों के साथ-साथ अधिकारों के प्रति भी सजग हुई हैं। सतत विकास लक्ष्यों की सूची में लैंगिक समानता को पांचवें स्थान पर रखा गया है, जिन्हें 2030 तक प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित है। पर जिस गति से महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और दुर्व्यवहार की घटनाओं में वृद्धि हो रही है, 2030 तक इस लक्ष्य को प्राप्त करना आसान नहीं लगता।

एक समतामूलक और लैंगिक विभेद-मुक्त समाज के निर्माण के लिए महिलाओं के प्रति समाज में स्थापित पूर्वाग्रहग्रस्त सोच को बदलना आवश्यक है। महिलाओं की प्रतिभा को कम करके आंकना, उन्हें गैर-आर्थिक इकाई मानना, उन्हें केवल शरीर के रूप में स्वीकार करना, यह धारणा कि उनमें निर्णय लेने की क्षमता का अभाव होता है, कुछ ऐसे पक्ष हैं जो उन्हें भयमुक्त होकर अपनी अस्मिता को स्थापित करने से रोकते हैं। इसके साथ ही राज्य, प्रशासन और अकादमिक बुद्धिजीवियों को इस दिशा में कठोर कदम उठाने होंगे, ताकि महिलाओं को एक सुरक्षित समाज उपलब्ध कराया जा सके।

राष्ट्रीय सहारा

Date:06-07-23

आतंकवाद से लड़ें

संपादकीय

शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) के मंच से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का आतंकवाद और उसका वित्तीय संपोषण करने वाले देशों को खरी-खरी सुनाना अकारण नहीं है। भारत और उसके पुरजोर प्रयास से पूरी दुनिया यह बात जान गई है कि पाकिस्तान आतंकवाद का नाभि-केंद्र है। भारत के जम्मू-कश्मीर में अलगाववाद - आतंकवाद को सुनियोजित तरीके संरक्षित कर पंजाब में खालिस्तान जैसे विभाजनकारी मांगों का वही साजिशकर्ता है। भारत के आतंकवादी हमलों के

सरगनाओं के पाकिस्तान में पनाह मिलने के सबूतों के बाद भी वह उन पर न तो अपने मुल्क के कानून के अनुरूप कार्रवाई करता है। और न ही अंतरराष्ट्रीय कानूनों का पालन करता है। 9/11 के पहले तक तो अमेरिका भी उसके भ्रम में फंसा था। लेकिन वैश्विक मंचों पर भारत के उभरते कदों और आतंकवाद से अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ते चौतरफा दबावों के नुकसान की उसकी दलीलों ने फिजां बदल दी है। अभी एक-डेढ़ हफ्ते पहले मोदी की अमेरिका यात्रा के बाद तो अमेरिका ने पाकिस्तान से साफ कह दिया है कि वह आतंकवाद को समर्थन देना बंद करे। यह उस चीन के प्रति भी प्रतिक्रिया थी, जिसने पाकिस्तान में पनाह लिए मुंबई के ताज हमले के दुर्दात आतंकवादी साजिद मीर को वैश्विक आतंकवादी घोषित करने में अडंगा डाल दिया था। तो जब एससीओ की आभासी बैठक में चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग सामने पड़े तो मोदी ने उन्हें भी आड़े हाथों लिया। उनकी आतंकवाद की निंदा करने से न हिचकिचाने और दोहरा मानदंड से बाज आने की नसीहत दरअसल जिनपिंग को ही थी। मोदी की प्रतिक्रिया में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री की तरफ से भारत में अल्पसंख्यकों (मुसलमानों) के राज्य द्वारा हाशिये पर डाले जाने की बात उठाई गई। इसके बावजूद उन्हें उस मसविदे पर दस्तखत करना पड़ा, जिसमें संगठन के सदस्य देशों से भारत ने आतंकवाद और कट्टरतावाद पर रोकने और उन्हें वित्तीय रूप से संपोषित न करने की बात की थी। भारत का जोर था कि सदस्यों देशों के बीच सहयोग और आधुनिकीकरण के कार्यक्रम चलाए जाएं पर इसमें संबद्ध देशों की संप्रभुता एवं क्षेत्रीय अखंडता का अनादर न किया जाए। इसकी कसौटी पर चीन की बेल्ट रोड इनिशिएटिव (बीआरआई) को खरी न पाते हुए भारत ने फिर इस पर अपनी मुहर लगाने से इनकार कर दिया। अंतिम मसविदे से इसके जिक्र तक को हटवा दिया। यह भारत की बढ़ती साख और सामर्थ्य की बात कही जाएगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:06-07-23

परदेश में परचम लहराते देशी लोग

बद्री नारायण, (निदेशक, जीबी पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान)

डायस्पोरा के लिए हिंदी में अभी तक उसी अर्थ ध्वनि को अभिव्यक्त करने वाला कोई माकूल शब्द नहीं है। आजादी की लड़ाई के दिनों में 'प्रवासी भारतीय', 'प्रवासी जगत' जैसे शब्द बनाए गए थे। तब औपनिवेशिक शक्तियां पूरी दुनिया में प्रवासी जगत सृजित करने वाली महत्वपूर्ण कारक बनी थीं, क्योंकि तब उनके विस्तारित हो रहे खेतों के लिए अपार संख्या में श्रमिक चाहिए थे। अत: उन्होंने मानवीय जनसंख्या के मानचित्र में व्यापक उथल-पुथल पैदा की। भारत से गिरमिटिया श्रमिक पूरी दुनिया में ले जाए गए। आजादी के बाद, विशेषत: 1990 के बाद के भूमंडलीकरण के दौर में भारत से मानवीय पुर्वसन में काफी तेजी आई। इसने सदियों से व्यापार एवं अन्य प्रकार की आर्थिक आवाजाही से बन रहे भारतीय 'डायस्पोरा' को सशक्त किया।

प्रवासी भारतीय भारत से बाहर रहकर भी अपनी कल्पनाओं, अपने संवाद और संबंधों से 'दूरस्थ भारत' रचता रहा। फोन, मोबाइल, सोशल मीडिया, वाट्स एप, ट्विटर जैसे संवाद के आधुनिक संसाधनों ने राष्ट्रीय सीमाओं को तो धुंधला किया

ही, साथ ही, प्रवासी जगत के जरिये एक अलग समुदाय पैदा किया। इस प्रवासी भारतीय जगत ने 1990 के बाद के दशक में देश में अनेक तरह की राय, सोच-समझ व विचारों के बनने और बिगड़ने की प्रक्रिया को प्रभावित किया। भारतीय जनतांत्रिक राजनीति में प्रतिद्वंद्वी नेताओं और राजनीतिक दलों के पक्ष एवं विपक्ष में विचारों को गोलबंद करने में इस प्रवासी समुदाय की भूमिका बढ़ने लगी, जिसे 'पीओआई', 'एनआरआई' जैसे नामों से हम संबोधित करते रहे हैं। इन समुदायों के लिए दोहरी नागरिकता की अवधारणा के आने के बाद भारतीय राजनीति में 'ओपिनियन' रचने वाले समुदाय के रूप में इनकी भूमिका और ज्यादा बढ़ी।

जैसा कि हम जानते हैं, भारतीय राजनीति आज छवियों, प्रतीकों और वृत्तांतों के बड़े युद्ध में तब्दील होती जा रही है। ऐसे में, राजनीतिक दल अपनी छवियों और वृत्तांतों के लिए नए संसाधन तलाशने लगे हैं। ऐसे में, भारतीय प्रवासी जगत की भूमिका देशी राजनीतिक वृत्तांतों को वैधता दिलाने में महत्वपूर्ण हो गई है।

1990 के दशक के बाद साइबर स्पेस के शक्तिवान होते जाने से देश में राजनीतिक छवियों के निर्माण में प्रवासी जगत की भूमिका को सबसे पहले भारतीय जनता पार्टी के नेता नरेंद्र मोदी ने आकार दिया। वह अमेरिका, इंग्लैंड जैसे मुल्कों में जाकर अपने प्रयासों के संदर्भ में वहां के प्रवासी जनों से संवाद करने लगे। इसी शैली को बाद में आम आदमी पार्टी और कांग्रेस ने भी अपनाया। आम आदमी पार्टी के लिए कई चुनावों में प्रवासी भारतीयों का एक भाग अनेक तरह से मददगार तो बना ही, साथ ही चुनाव के दिनों में कई प्रवासी भारतीय आम आदमी पार्टी के पक्ष में आकर चुनाव प्रचार भी करने लगे।

कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने भी बाद में चलकर इस राजनीतिक शैली को अपनाया और अपने अनेक राजनीतिक विचारों व तर्कों की स्वीकृति के लिए अमेरिका, इंग्लैंड व अन्य देशों में प्रवासी भारतीयों के साथ संवाद आयोजित करने लगे। कांग्रेस ने 'ओवरसिज कांग्रेस' का भी गठन किया, जिसके मुखिया राजीव गांधी के पुराने दोस्त सैम पित्रोदा बनाए गए। समकालीन भारतीय जनतंत्र, नरेंद्र मोदी व भाजपा की आलोचना में उनके विमर्श प्रवासी भारतीयों के मार्फत न्यूज चैनलों, अखबारों, सोशल मीडिया के माध्यम से चल निकले।

भारतीय समाज, विशेषकर ग्रामीण समाज में विदेश नौकरी करने गए लोग आदर्श माने जाते रहे हैं। ऐसे में, उनकी ओर से आने वाली कोई भी राय भारत में भी कमोबेश स्वीकृति पाती है। दूसरा, प्रवासी भारतीयों की अमेरिका-इंग्लैंड जैसे देशों में प्रभावी हो रही उपस्थिति उन देशों की सरकारों को भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए प्रेरित करती है। फिर विदेश में बढ़ रहा भारत का यह सम्मान भारतीयों का मन मोहने लगता है। तीसरा, विश्व कूटनीति में भारत के लगातार महत्वपूर्ण होते जाने के कारण और प्रधानमंत्री मोदी द्वारा विभिन्न देशों में बसे भारतीयों की चिंता व उनके साथ स्थापित किए जा रहे संबंध ने उन देशों में भारतीय प्रवासियों का मान बढ़ाया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें भारतीय प्रवासी जगत भारत राष्ट्र की जनतांत्रिक राजनीति को और भारत राष्ट्र की जनतांत्रिक राजनीति भारतीय डायस्पोरा को मजबूत करने में पर्याप्त सक्रिय दिखने लगी हैं।

मगर एक चुनौती भी है। प्रवासी जगत की इस बढ़ती शक्ति की भूमिका सकारात्मक रहे, नकारात्मक न बने, यह हमें देखना होगा। मजबूत होने के बाद भारतीय प्रवासी जगत कई देशों में धार्मिक और अन्य आधारों पर विभाजित दिखने लगा है। इन्हीं विभाजनों के आधार पर पिछले दिनों में खालिस्तानी आतंकवाद, इस्लामी आतंकवाद आदि को 'टेरर फंडिंग' और खाद-पानी मिलने के प्रमाण मिले हैं। तमिल अस्मिता के आक्रामक उभार में भी दुनिया भर में फैले उनके प्रवासियों

की भूमिका दिखती रही है। कनाडा की संपूर्ण जनसंख्या में 2.1 प्रतिशत हिस्सा सिख आबादी का है, जहां से 1970 के दशक से ही खालिस्तानी आतंकवाद को शह मिलता रहा है। वहां की राजनीति में सिख प्रभावी हैं। खालिस्तानी आंदोलन की कथित ग्लोबल उपस्थिति इसी सिख प्रवासी जगत के छोटे से भाग के नकारात्मक जुड़ाव के कारण बन पाई है। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी और दुनिया के अन्य सभी विकसित देशों में बसे तमाम भारतीय समुदायों को जोड़े रखने की जरूरत है। प्रवासी भारतीयों की शक्ति कहीं भी देश के विरुद्ध खर्च न हो, यह सुनिश्चित करना होगा।

आगामी 2024 का संसदीय चुनाव नजदीक है। इस संदर्भ में भारतीय प्रवासी जगत को घरेलू राजनीति के एक मंच के रूप में गढ़ने की भी होड़ बढ़ेगी। इससे 'परदेश' 'देश' की राजनीति को प्रभावित करने वाली ताकत बनकर उभरेगा। भारतीय जनतंत्र का विमर्श पश्चिमी जगत और अमेरिकी मंचों में स्वीकृति या नकार पाकर भारतीय राजनीति को प्रभावित करेगा। इसे हम भूमंडलीकृत विश्व में अवधारणाओं की आवाजाही की बढ़ती राजनीतिक प्रवृत्ति के रूप में भी देख सकते हैं। अब राजनीति सचमुच में स्थान केंद्रित नहीं रह गई है, संवाद के साधनों ने इसे देश और स्थान की सीमाओं के पार ला खड़ा किया है।